बाल संसद के रास्ते...

✍ प्रमोद दीक्षित 'मलय'

किसी भी अवधारणा या योजना को क्रियान्वित किए जाने के लिए पूरे मन से कोशिश करना बहुत जरूरी है। उसके बिना वह एक ढोंग या दिखावा मात्र बनकर रह जाती है। बाल संसद या बाल पंचायत की बहुत बात की जाती है। बहुत सारे विद्यालयों में वह गठित भी की जाती है। लेकिन क्या सचमुच उसका वह उद्देश्य पूरा होता है, जिसके लिए उसकी कल्पना की गई है।

प्रमोद दीक्षित का यह आलेख बताता है कि एक स्कूल में बाल संसद की अवधारणा किस तरह उभरी, उसे धरातल पर लाने के लिए उन्होंने किस तरह के प्रयास किए और फिर उससे जो हासिल हुआ, उसने उन्हें कैसी खुशी दी।

कोई तीन वर्ष पहले की बात है। एक गांव में समुदाय के साथ बैठक थी। मेरा पहली बार जाना हो रहा था। बैठक में बच्चों की शिक्षा व्यवस्था एवं पोषण के मुद्दे पर बातचीत होनी थी। उपस्थित लोगों ने अपने गांव के स्कूल में अच्छी पढ़ाई होने का जिक्र किया। यह भी बताया कि सभी शिक्षक समय से आते हैं। मेहनत से पढ़ाते हैं। हमारे बच्चे भी पढ़ने–लिखने में ठीक हैं। ये बातें मुझे सुखद आश्चर्य की अनुभूति देने और स्कूल देखने की इच्छा जगाने के लिए पर्याप्त थीं। बैठक समाप्त होने के बाद मैं स्कूल गया। विद्यालय का मुख्य द्वार खुला था। मैं अंदर चला गया। पहली नजर में विद्यालय में कोई नई बात नहीं दिखी। कक्षाएं चल रही थीं। अध्यापकों के पढ़ाने की आवाजें बाहर तक आ रही थीं। बीच–बीच में घम्म्....घम्म्....चटाक्....चटाक् की ध्वनियां सुनाई पड़ रही थीं। चप्पल–जूते करीने से बाहर रखे हुए थे। कोई भी बालक–बालिका परिसर में दिखाई नहीं पड़ रहा था।

प्रधानाध्यापक मुझे अपने कमरे में ले गए। परस्पर परिचय और औपचारिकताओं के बाद हम दोनों ने 'शिक्षा का अधिकार' और 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005' पर चर्चा की। उनका मानना था कि ये सब किताबी बातें हैं, इनका विद्यालय की वास्तविक दुनिया से कोई लेना–देना नहीं है। यदि स्कूलों में दंड का प्रयोग न करें तो अनुशासन खत्म हो जाएगा। विद्यार्थी–शिक्षक संबंधों के मैत्रीपूर्ण होने और बच्चों को सोचने–समझने एवं स्वयं कुछ करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराने पर उनका कतई विश्वास नहीं था। मैं सोच रहा था कि मैं किसी विद्यालय के प्रधानाध्यापक से बात कर रहा हूं या किसी कैदखाने के जेलर से, जहां दाखिल हुआ बच्चा छह घंटों के लिए कैदी है, बंधक है। जहां प्रेरणा, हास्य, उल्लास, उमंग, उत्साह, प्यार–दुलार, ममता, समता, कल्पना, तर्क एवं सृजन का संसार नहीं बल्कि घुटन, रुदन, पीड़ा, नैराश्य, कलुषता और विषमता का राज है। उसकी मासूमियत, जिज्ञासा, इंद्रधनुषी कल्पनाओं और संवेदनाओं की रोज हत्या की जाती है। जहां कदम–कदम पर वर्जनाएं हैं, कोमल चित्त पर थोपी गईं परंपरागत सीखें हैं। इन छह घंटों में वह कितनी बार मरता और जीता है।

मैंने बच्चों से मिलने की इच्छा व्यक्त की। वे मुझे यह जताते हुए कक्षाओं में ले गए कि इस विद्यालय के अनुशासन की चर्चा विभाग में भी है। मैं देख रहा था कि वे गर्व से फूले जा रहे थे जैसे शिक्षा के क्षेत्र में कोई अद्भुत क्रांतिकारी नवाचार कर दिया हो।

मैं एक कक्षा, शायद सातवीं, में घुसा तो सभी बच्चों ने यंत्रवत खड़े होकर अभिवादन किया। उस समय पढ़ाए जा

रहे विषय पर कुछ बातचीत की, प्रश्न पूछे। अधिकांश बच्चों ने लगभग सही जवाब दिए। मैंने कुछ कॉपियां लीं। देखा, बच्चे वही रटी–रटाई बातें शब्दशः बोल रहे थे जो कुछ उनमें लिखाया गया था। शिक्षक की सोच हावी थी, बच्चों का अपना कुछ भी नहीं था। प्रधानाध्यापक जी के चेहरे पर विजेता के भाव तैर रहे थे। जब मैंने प्रश्नों को थोड़ा कल्पना आधारित किया तो बच्चे अचकचा गए, कुछ बोल नहीं पाए। लेकिन बच्चे सचमुच प्यारे थे। मैंने बच्चों से उनके बारे में बातें करने की कोशिश की। पहले तो बच्चे बोलने में झेंप रहे थे। वे एक बार मुझे तो दूसरी बार अपने प्रधानाध्यापक जी को देख रहे थे। यह बच्चों के मन–मस्तिष्क में प्रधानाध्यापक जी का खौफ था या ऐसी बातचीत की प्रक्रिया शायद उनके लिए पहली बार हो रही थी। मैंने प्रधानाध्यापक जी से अनुरोध किया कि वे मुझे बच्चों के साथ अकेला छोड़ दें। वे अनमने भाव–से बाहर चले गए।

पहल तो करें...

अब कक्षा में मैं था और बच्चे। हमने मिलकर एक गीत गाया। बातें पुनः प्रारंभ हुईं। वातावरण सहज होने पर वे अपनी बातें थोड़ा खुलकर कहने लगे। बातों का सिलसिला घर–परिवार, खेत–खलिहान, दोस्तों, खेल–खिलौने, पढ़ाई–लिखाई, स्कूल से होते हुए नदी, तालाब, पहाड़, बादल, फूल, तितली, पक्षी और उस मरकहे सांड तक भी पहुंच गया जो स्कूल आने के तालाब वाले रास्ते पर बरगद और पीपल के झुरमुट में अक्सर मिलता है। यह भी कि पड़ोस के गांव 'बल्लान' में हर साल मकर संक्रांति पर लगने वाले 'चम्भू बाबा के मेले' में जाना उन्हें अच्छा लगता है। वहां गोल घूमने वाला झूला होता है और जादूगर का खेल भी। लेकिन लकड़ी की पेटी में कबूतर और खरगोश को बंद रखने पर गुस्सा भी आता है।



हर कोई मुझे अपनी बात पहले बता देना चाहता था, इससे कक्षा में थोड़ा शोरगुल भी होने लगा था। अब उनके चेहरे पर खुशी के भाव देखे जा सकते थे। बच्चों में मैं एक संभावना देख पा रहा था। विद्यालय तो मैं अनायास बिना किसी योजना के चला आया था, लेकिन अब मेरे दिमाग में योजना पकने लगी थी। मन ही मन मैंने योजना पर काम करने का निश्चय कर लिया था। बातचीत के इसी क्रम में मैंने बच्चों से बाल संसद की चर्चा कर दी। वे इसके बारे में बिलकुल नहीं जानते थे। लेकिन उनमें उत्सुकता थी, वे बाल संसद के बारे में अधिकाधिक जानकारी करना चाहते थे। मैंने हर संभव जानकारी देने की कोशिश की। बच्चों ने बाल संसद के गठन की इच्छा व्यक्त की लेकिन यह भी बताया कि प्रधानाध्यापक जी ऐसे किसी काम को पसंद नहीं करते। वे तो बस पढ़ाई की ही बातें करते हैं।

मैंने प्रधानाध्यापक जी से बाल संसद के बारे में विस्तार से बातें कीं। वे ऐसी किसी संस्था के बारे में नहीं जानते थे। मैंने उनसे विद्यालय में बाल संसद बनाने का अनुरोध किया। वे इस प्रस्ताव से सहमत न थे, उन्हें अनुशासन खत्म हो जाने का डर था। लेकिन मेरे बार–बार आग्रह पर इस शर्त के साथ तैयार हुए कि विद्यालय की शैक्षिक व्यवस्था और अनुशासन पर कोई आंच नहीं आनी चाहिए। मैंने वादा किया, ऐसा कुछ नहीं होगा बल्कि बाल संसद के बन जाने से विद्यालय बेहतर हो जाएगा, लेकिन मुझे एक अध्यापक का सहयोग चाहिए जो बच्चों के साथ काम करेंगे। इसके लिए विज्ञान शिक्षक राम किशोर पांडेय सहर्ष तैयार हो गए।

बाल संसद ऐसी बनी

प्रत्येक कक्षा से चार–पांच बच्चों का चयन

करना था। बच्चों से बातचीत करते समय कुछ बच्चे मेरी समझ में आ गए थे। हम दोनों ने मिलकर तीनों कक्षाओं से 15 बच्चे चुने जिनमें आठ लड़कियां थीं। हालांकि चयन का यह तरीका ठीक नहीं था लेकिन हमें शुरुआत कहीं न कहीं से तो करनी थी। यह करते–धरते काफी समय निकल गया। मैंने रामकिशोर जी से कुछ आवश्यक बातें साझा कर अगले सप्ताह आने का वादा किया। बीच के सात–आठ दिनों में वे बाल संसद को समझने की दृष्टि से एक बार आकर मुझसे मिले। अगर मुद्दे के प्रति समझ हो तो काम करना बहुत सरल हो जाता है। योजना के अनुसार वे प्रतिदिन चयनित बच्चों के साथ भी आधा–एक घंटा बैठते और मुद्दों पर बातें करते। इसका यह लाभ हुआ कि बच्चे मुद्दों को समझना और उस पर अपनी राय व्यक्त करना सीख गए। बैठना सीख गए। यह बात भी समझ में आई कि बाल संसद विद्यालय के सभी बच्चों का संगठन है। इसलिए कुछ टोलियां बनाकर हर बच्चे को उसकी रुचि अनुसार किसी न किसी टोली और उसके काम से जोड़ा गया।

अगले सप्ताह जब मैं विद्यालय पहुंचा तो बाल संसद में चयनित बच्चे एक कमरे में गोल घेरे में अपने शिक्षक के साथ बैठे अनौपचारिक बातचीत कर रहे थे। इस एक सप्ताह में बच्चों में काफी बदलाव दिख रहा था। अब उनमें झिझक न होकर एक आत्मविश्वास झलक रहा था। आज काफी काम करना था। बाल संसद के पदाधिकारियों का चयन करना था। संसद की आवश्यकता, महत्त्व, बाल विकास में उसके योगदान पर कुछ और चर्चा करनी थी।

बच्चे उत्साह से लबरेज थे। मेरे यह कहने पर कि आज गीत आप में से कोई गाए तो ठीक रहेगा। इस पर एक बच्ची ने सुंदर लोकगीत गाया, साथ में सबने मिलकर दोहराया। बातें शुरू हुईं। थोड़ा सा उकसाने पर अपनी समझ अनुसार विचार रखने लगे। आम सहमति से पदों का बंटवारा हुआ। अध्यक्ष, प्रधानमंत्री, शिक्षा, उद्यान, जल, रखरखाव, सूचना, क्रीड़ा, सांस्कृतिक, भोजन, पुस्तकालय, कार्यालय आदि विभागों के मंत्री और उनकी टोलियां बनाईं गईं। उनके कार्यों के बारे में भी बताया गया। बैठक करने, प्रस्ताव रखने, उस पर अपनी बात कहने और लिखने के बारे में परामर्श दिया गया।

इस तरह उस विद्यालय में बाल संसद का काम धीरे–धीरे बढ़ने लगा। सब बच्चों से मेरा भी एक अपनेपन का रिश्ता जुड़ने लगा था। इस काम में आनंद आने से मैं भी बहुत सारी बातें सीख पा रहा था। इस कारण मैं भी महीने में लगभग दो–तीन बार स्कूल हो आता। इस प्रकार काम करते हुए मई आ गया। परीक्षाएं प्रारंभ होने को थीं। सत्र समाप्त होते–होते बच्चे काफी कुछ सीख गए थे। नया सत्र प्रारंभ हो चुका था। जुलाई का महीना था। मैं एक दिन कार्यालय में अपना काम निबटा रहा था कि मोबाइल बजा। कोई अनचीन्हा नंबर था।



उधर से आवाज आई, 'हल्लो...सर, नमस्ते मैं ...बोल रही हूं।' 'मैंने आपको पहचाना नहीं।'

'अरे सर, मैं....विद्यालय में कक्षा आठ की छात्रा हूं। आप बाल संसद बनाने आए थे न पिछले साल।'

'याद आया। तुम वही हो न जो जिद करके मुझे अपने घर ले गई थीं और खाने को गुड़–चना दिया था।'

'जी सर। मैं वही हूं। अब आठ में आ गई हूं...!' और वह हंस पड़ी।

उसने यह भी बताया कि अब उसका स्कूल बदल रहा है। सर लोग भी परिवेशीय बातें करने लगे हैं और बच्चों को बोलने का अवसर देते हैं। फिर बोली, 'तो सर इस साल भी संसद बनवा दीजिए न।'

मैंने किसी दिन आने का वादा किया, वह खुश थी। मैं सोच रहा था कि शायद बाल संसद के बहाने विद्यालय में बाल मैत्रीपूर्ण वातावरण बन रहा है। अब विद्यालय में कैदखाने की अपनी पहचान से मुक्त होने की छटपटाहट थी और वह अपने को एक आनंदघर के रूप में रूपांतरित होने को लालायित हो रहा था।

मैंने वहां के शिक्षकों से बात कर इस बार बाल संसद का चुनाव करवाने का आग्रह किया जिसे उन्होंने मान लिया। मैंने उन्हें चुनाव की प्रक्रिया बताई और कुछ अन्य आवश्यक सुझाव दिए। चुनाव के दिन मैं भी पहुंचा। उस दिन विद्यालय में चहल–पहल थी, उत्सव जैसा माहौल था। लग रहा था कि कुछ नया हटकर होने वाला है। सराहनीय बात यह थी कि सभी शिक्षक अपने कार्यों में जुटे हुए थे। प्रधानाध्यापक जी ने बताया कि एक शिक्षक को प्रभारी बनाया गया है। नामांकन और नाम वापसी की प्रक्रिया दो दिन पहले पूरी हो गई है और प्रत्याशियों ने बच्चों से संपर्क कर लिया है। मतदान की प्रक्रिया प्रारंभ होने के पहले अध्यक्ष और प्रधानमंत्री पद के दावेदारों का बच्चों के सम्मुख संबोधन होना था। दोनों पदों पर एक–एक लड़की और लड़का अर्थात् दो–दो दावेदार थे। सबने अपनी कही बातों में स्कूल को बेहतर बनाने, नियमित पढ़ने आने और मिलकर काम करने की अपील की।

लेकिन एक लड़की, वही गुड़–चने वाली लड़की, ने अपनी बातों से मेरा ध्यान खींचा। उसने कहा, 'यदि आप मुझे जिताते हैं तो मैं स्कूल में हो रहे भेदभाव और पढ़ाई में होने वाली पिटाई को खत्म करूंगी। कमजोर बच्चों के लिए बोले जाने वाले वाक्य कि 'इसे कुछ नहीं आता है, यह गधा है', यह कहना बंद हो। मैं चाहूंगी कि हम बच्चों को भी स्कूल में प्यार–सम्मान मिले। कक्षा में पीछे बैठने वाले विद्यार्थियों को भी आगे बैठने का मौका दिया जाए। हमें हमारे नाम से पुकारा जाए। मैं इन सबके लिए प्रयास करूंगी।' बहुत देर तक तालियां बजती रहीं। वहां उपस्थित हर व्यक्ति आश्चर्यचकित था कि ये वही बच्चे हैं जो पिछले साल अपनी बात नहीं कह पा रहे थे। चुनाव बाद परिणाम घोषित हुआ। गुड़–चने वाली लड़की अध्यक्ष बन चुकी थी।

परिवेश से जुड़ाव

बाल संसद को बने अभी एक महीना ही गुजरा था। लेकिन बच्चों में उत्साह और कुछ नया करने का भाव कुलाचें मार रहा था। रक्षाबंधन का त्योहार आने वाला था। बच्चों ने निर्णय लिया कि हम नए तरीके से यह पर्व मनाएंगे। उन्होंने बेकार पड़ी वस्तुओं– जैसे शादी के पुराने कार्ड, रेशमी धागे, गत्तों के टुकड़े, स्पंज, थर्माकोल आदि– से राखियां बनाने का निश्चय किया। इस काम के लिए शिक्षकों को राजी करना कठिन था। शिक्षकों से बात करने के लिए बच्चों ने मुझसे अनुरोध किया। जब मैंने प्रधानाध्यापक और अन्य शिक्षक साथियों से इस काम के बारे में बात की तो वे एकदम से बौखलाते हुए बोले कि इससे पढ़ाई का बहुत हर्जा होगा। मुझे उन्हें समझाने में काफी मशक्कत करनी पड़ी कि ऐसी गतिविधियां पढ़ाई का जरूरी हिस्सा हैं और ऐसी गतिविधियों से बच्चों में रचनात्मक कौशल का विकास होता है।



खैर, काफी जद्दोजहद के बाद वे मान गए और एक दिन समूह बनाकर राखियां बनाने का काम शुरू हुआ। उस दिन विद्यालय में एक अलग प्रकार का माहौल था। मैं अनुभव कर रहा था कि बच्चे सही अर्थो में जीवन की पढ़ाई कर रहे थे। कुछ करके बहुत कुछ सीख रहे थे। यह सीखना उनका अपना था। वे अपनी राह स्वयं खोज रहे थे। तीन दिनों के सामूहिक कार्य का फल सुंदर और तरह–तरह की कल्पनात्मक राखियों के रूप में सामने था। पहली बार ऐसा हो रहा था कि शिक्षक बच्चों की सोच और काम को सराह



रहे थे। त्योहार की छुट्टी से पहले बच्चों ने शिक्षकों और साथियों को राखियां बांधी और इससे भी बढ़कर बच्चों ने परिसर में लगे वृक्षों को राखियां बांधकर उनकी रक्षा का संकल्प लिया। यह कहना बिलकुल सही होगा कि जब हम बच्चों को कुछ करने की स्वतंत्रता और कल्पना के अवसर उपलब्ध कराते हैं तो ऐसे सृजन के सुखदाई पल अनायास ही उपलब्ध हो जाते हैं।

समुदाय की भागीदारी

बाल संसद की नियमित बैठकें हो रही थीं। नए–नए मुद्दे तलाशे जाते, उन पर विचार और काम होता। एक बैठक में एक मुद्दा उभरा कि विद्यालय किसका है– सरकार का या समाज का। यदि समाज का है तो लोगों को समय–समय पर विद्यालय आना चाहिए और विद्यालय के विकास के लिए सुझाव देते हुए काम करना चाहिए। लेकिन समाज तो दूर खड़ा है। विद्यालय और समुदाय के बीच की बढ़ती दूरी को कम करने पर विचार–विमर्श हुआ। दीपावली का त्योहार नजदीक था। बातों ही बातों में तय हुआ कि इस दीवाली में विद्यालय को समुदाय के सहयोग से सजाया जाए और दीपक जलाए जाएं। शिक्षकों का साथ मिला तो उत्साह चार गुना हो गया। योजना बनाई गई कि बच्चे दो–दो दीपक, तेल और बाती लाएंगे। अपने साथ परिवार से किसी सदस्य को लाएंगे। गांव में संपर्क के लिए मुहल्लेवार टोलियां बनीं। प्रत्येक टोली में बच्चों के साथ एक शिक्षक और प्रबंध समिति के एक सदस्य को शामिल किया गया। एक सप्ताह तक ग्राम पंचायत के सभी वार्ड, मुहल्लों और मजरों में सभी लोगों से संपर्क किया गया। पहले तो लोगों ने समझा कि कोई सरकारी आदेश होगा इसलिए मजबूरी में शिक्षक द्वार–द्वार भटक रहे हैं और खूब चुटकी ली। लेकिन सच का पता लगने पर वे पछताते हुए साथ हो लिए। पूरे गांव में यह चर्चा का विषय बन चुका था। कार्यक्रम के दिन विद्यालय की सफाई, लिपाई और सजावट, रंगोली आदि का काम बच्चों ने मिलकर किया। ऐसा पहली बार हो रहा था कि किसी काम में बालक और बालिका का कोई भेद नहीं था। अपने–अपने समूह के साथ सब मिलकर काम कर रहे थे।

निश्चित दिन को शाम के समय बच्चे विद्यालय आना शुरू हो चुके थे। मैं सुबह से ही हाजिर था। कुछ बच्चे दो से अधिक दीपक लाए थे। लेकिन आश्चर्य अभी बाकी था। अभिभावक, माता–पिता भी दीपक लेकर आ रहे थे। कुछ पुराने विद्यार्थियों का समूह भी आ जुटा। प्रबंध समिति के सदस्य भी आए। कुल 917 दीपक एकत्र हुए। मैं अपने साथ एक कंप्यूटर प्रशिक्षण संस्थान के प्रबंधक को ले गया था। वे विद्यालय के प्रति गांव वालों का अपनापन देखकर चकित थे क्योंकि अब तक तो उन्होंने ऐसा होते कहीं देखा–सुना नहीं था। जब सभी दीपक जलाए गए तो पूरा विद्यालय रोशनी से नहा गया। ऐसा लग रहा था कि आसमान से सितारे धरती पर उतर आए हों।

एक छोटी–सी बैठक हुई। उपस्थित सभी लोगों ने कहा कि यह उनके जीवन का पहला अवसर है कि किसी विद्यालय को बच्चों और गांव के लोगों ने मिलकर सजाया हो। गांववासियों ने यह भी वादा किया आज के दिन बाल संसद के बच्चों ने पहल कर जो परंपरा डाली है उसे हम आगे भी जारी रखेंगे। गांव के युवकों के दीवारी नृत्य–दल ने नाच–गायन के साथ साहसिक करतब दिखाए और ढोल, नगड़िया एवं नर्तकों के कमर में बंधे घुंघरुओं की मधुर ध्वनि से परिसर गूंज उठा।

समस्या : पहचान भी, समाधान भी

एक बात मुझे और याद आती है। उस विद्यालय में 207 बच्चों का नामांकन था और एक नल होने के कारण मध्याह्न भोजन के समय थाली धोने एवं पानी पीने में काफी अव्यवस्था रहती

थी। विद्यालय द्वारा कई बार प्रार्थना पत्र देने के बावजूद दूसरा नल नहीं लग सका। बाल संसद की बैठक में इस संबंध में एक प्रस्ताव रखा गया। सारी समस्याओं का चित्रण करते हुए एक प्रार्थना पत्र खंड विकास अधिकारी को भेजा गया। आश्चर्य, अगले सप्ताह ही नल लगाने की मशीन विद्यालय आ गई। इस सफलता से बाल संसद के बच्चे अब अपनी ताकत को समझने लगे थे और उनकी काम करने की परिधि विद्यालय की चारदीवारी से बाहर निकलने को आतुर थी।

एक और अवसर मानो उनकी प्रतीक्षा में ही था। वाकया कुछ यूं है, कक्षा सात में पढ़ने वाली एक छात्रा की बड़ी बहन की शादी तय हो गई थी। वह सोलह बरस की थी। उसने इस साल ही इसी विद्यालय से कक्षा आठ पास की थी। वह आगे पढ़ना चाहती थी। लेकिन उसके माता–पिता उसका विवाह कर अपनी जिम्मेवारी से मुक्त होना चाहते थे। विद्यालय में जब इस संबंध में जानकारी हुई तो बच्चों ने इस बाल विवाह को अपने शिक्षकों से बात करके रोकने का निश्चय किया। बाल संसद में निर्णय हुआ कि उसके घर जाकर उसके माता–पिता से बात की जाए। बातचीत हुई लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला। माता–पिता ने अपनी तमाम मजबूरियों का हवाला देते हुए शादी होने देने की प्रार्थना की। बात न बनते देख बच्चों ने वर पक्ष के पिता का फोन नंबर खोज निकाला और उनसे बात की। लेकिन उन पर कोई असर न होता देख बाल संसद की अध्यक्ष ने धमकी दी कि यदि बारात लेकर आए तो हम थाने में सूचना दे देंगे। इस पर उन्होंने आमने–सामने बैठकर बात करने की इच्छा व्यक्त की। एक निश्चित तिथि पर दोनों पक्षों के माता–पिता, रिश्तेदार, शिक्षक और बाल संसद के पदाधिकारी बैठे जिसमें काफी बातचीत हुई। लेकिन कोई निर्णय नहीं निकल सका। अब मामला घर का न होकर पूरे गांव का हो गया था। पूरा गांव बाल विवाह रोकने के तर्क से सहमत था। लेकिन सामाजिक मान्यताओं की दुहाई देते हुए किसी तरह से शादी हो जाने देना चाहता था। अंत में यह निश्चित हुआ कि विवाह तो होगा लेकिन वह अठारह की हो जाने तक मायके में रहेगी और उसके पढ़ने–लिखने के अवसरों पर कोई रोक–टोक नहीं होगी। इन सब बातों–शर्तों की लिखा–पढ़ी भी हुई। यह भी तय हुआ कि आगे गांव में कोई भी बाल–विवाह नहीं होगा। उस समय की बाल संसद की अध्यक्ष गुड्डन कहती हैं, 'यह चुनौती भरा था। आखिर यह हमारे स्कूल का मसला नहीं था। लेकिन एक बालविवाह को होते हुए देखना भी हमें मंजूर नहीं था। यदि हमारे शिक्षकों ने सहयोग न किया होता तो हम सफल न होते।'

मंजिलें और भी हैं

इस विद्यालय की बाल संसद की उपलब्धियों की एक लंबी सूची है। मार्च 2013 की बात है। कुछ नवाचारी शिक्षकों के स्वप्रेरित समूह 'शैक्षिक संवाद मंच' ने उस विद्यालय में अध्यापकों का दो दिवसीय शैक्षिक चिंतन शिविर करना चाहा। विद्यालय के शिक्षक राम किशोर मंच से जुड़ चुके थे। प्रधानाध्यापक जी का भी सहयोग मिलने लगा था। शिविर का कार्यक्रम तय हो गया। जीरो बजट पर कार्यक्रम करना था, बाजार से वही सामान लाया जाएगा जो गांव में पैदा नहीं होता। शिक्षकों की बाल संसद के साथ बैठक हुई। निर्णय हुआ कि भोजन बच्चों के घरों पर रखा जाएगा। गांव वालों से बात हुई, सब खुशी से तैयार हुए। अब बाल संसद के लिए परीक्षा की घड़ी थी। यह एक अलग प्रकार का काम था। व्यवस्था की पूरी जिम्मेदारी बच्चों ने संभाली थी। भोजन, बैठक व्यवस्था, मंच की साज सज्जा, प्रकाश, अतिथि स्वागत, कार्यालय आदि का प्रबंधन बच्चों ने बखूबी निभाया। शिविर के सहभागी और अतिथियों ने बच्चों और गांव की भूरि–भूरि प्रशंसा की। बच्चों का आत्मविश्वास अब सातवें आसमान पर था।

जब यह लेख तैयार कर रहा था तो बच्चों से उनके अनुभव





अपनी पढ़ाई बीच में छोड़कर पिता के साथ मजदूरी करना प्रारंभ कर दिया था। बाल संसद और मीना मंच के प्रयासों से वह शिक्षा की मुख्यधारा से पुनः जुड़ पाया। वर्तमान अध्यक्ष अनूपा के विचार प्रेरित करते हैं। वह कहती हैं, 'पहले स्कूल में लड़कों और लड़कियों के काम का बंटवारा था। साफ–सफाई, लिपाई–पुताई, रंगोली बनाना, मध्याह्न भोजन परोसने में सहयोग करना हम लड़कियों के जिम्मे था। अब माहौल बदल गया है। काम केवल काम होता है। अब सभी काम मिलकर करते हैं।' आगे बात जोड़ती हैं, 'स्कूल के इन कामों का असर गांव तक पहुंच गया है। घरों में महिलाओं ने अब खाने–पीने में लड़का–लड़की में भेदभाव करना छोड़ दिया है। यह समानता का व्यवहार बाल संसद के कारण हो पाया है।'

जानने एक बार फिर उस विद्यालय गया। मैंने अनुभव किया कि अब उस विद्यालय में जीवन सांसें ले रहा था। बच्चों का मधुर कलरव था। विद्यालय अब चहक रहा था। बच्चों से बहुत बातें हुईं। सांस्कृतिक मंत्री सुमन ने बताया, 'बाल संसद में आकर हमें अपने अधिकार और कर्तव्यों की समझ आई है। अपनी ताकत का एहसास हुआ है। हमें लगता है कि अब स्कूल और गांव के लिए हम बेहतर काम कर सकेंगे।' यहां मुझे यह कहने में कोई गुरेज नहीं है कि सुमन उस मेहतर (डोमार) जाति से है जिसने सदियों से समाज की उपेक्षा का दंश झेला है। उसके पिता बराती लाल विद्यालय प्रबंध समिति के सदस्य हैं और उन्हें गांव भर के अभिभावकों ने खुशी–खुशी चुना है। कई कार्यक्रमों में वे मंच पर बैठते हैं। इसे हम बाल संसद की उपलब्धि के तौर पर देख सकते हैं।

मनोज बाल संसद में प्रधानमंत्री हैं। अभी उन्हें प्रदेश स्तर पर 'मीना रत्न' का पुरस्कार मिला है। वे मानते हैं कि बाल संसद में काम करने से लोकतंत्र में विश्वास पैदा हुआ है। चुनाव की प्रक्रिया समझ पाए हैं। अब लग रहा है कि इंसान के रूप में गैरबराबरी उचित नहीं है। यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि मनोज ने घर की गरीबी को देखते हुए

उपलब्धियों की यह यात्रा कई सुनहरे पड़ावों से गुजरते हुए अनवरत जारी है। पिछले तीन सालों में नौ बच्चों ने राष्ट्रीय योग्यता परीक्षा (आय आधारित) में सफलता अर्जित की है। बच्चों की अपनी दीवार पत्रिका है जिसमें वे मन की बातें लिखते–गुनते हैं। मध्याह्न भोजन व्यवस्था बाल संसद के प्रयासों से अब विद्यालय प्रबंध समिति के हाथ में हैं जो बच्चों की रुचि का उच्च गुणवत्ता का भोजन मीनू अनुसार बनवाते हैं।

प्रधानाध्यापक जी रिटायर हो चुके हैं। विदाई समारोह में अपने अंतिम भाषण में वे स्वीकारते हैं, 'मैं गलत था। मैंने अपने शिक्षकीय जीवन में बच्चों को सुधारने में दंड को सर्वाधिक महत्त्व दिया। सुधार तो हम शिक्षकों को अपने कार्य व्यवहार में करना चाहिए। आज मैं एक नया जीवन, एक नई सीख लेकर जा रहा हूं। काश, मुझे कुछ और समय आप लोगों के साथ काम करने का मौका मिल पाता। लेकिन मुझे खुशी है कि यह बदलाव का दौर मेरे कार्यकाल में प्रारंभ हुआ है।'

कहने को बहुत कुछ है। बदलाव की यह प्रक्रिया अभी जारी है। अभी बहुत कुछ करना शेष है।

प्रमोद दीक्षित 'मलय' : लेखक ब्लॉक रिसोर्स सेंटर, नरैनी, बांदा में हिंदी के सह समन्वयक हैं। सम्पर्क 79/18, शास्त्री नगर, अतर्रा 210201, जिला–बांदा, उ0 प्र0। मो0 – 09452085234। सभी फोटो लेखक के सौजन्य से।